श्री गुरू शरणं मम
श्रीपरमात्मने नमः

ध्यानयोग विज्ञान–रहस्य

(ध्यानयोग साधना के सम्बंध में जानकारी देने
वाली एक लघु पुस्तिका)

लेखक

स्वामी आगमानन्द

प्रकाशक :
मानस प्रकाशन, नवगछिया

ध्यानयोग विज्ञान–रहस्य

लेखक : **स्वामी आगमानन्द**

प्रथम संस्करण : गुरु पूर्णिमा1997

द्वितीय संस्करण प्रकाशक : अध्यात्मसंघ पचगछिया बाजार नवगछिया, भागलपुर

द्वितीय संस्करण प्रकाशन तिथि : 17.04.2010

तृतीय संस्करण प्रकाशक : **श्रीमती ज्योति साहा एवं श्री सुब्रत साहा,** कुशाहा, बलिया बेलोन, सालमारी कटिहार।

तृतीय संस्करण प्रकाशन तिथि : 14.10.11 ई० शुक्रवार

सर्वाधिकार : लेखक

पुस्तक प्राप्ति स्थान–

1. श्रीकृष्णा बुक सेलर
   स्टेशन रोड, भागलपुर
2. पुस्तक घर
   भारतीय स्टेट बैंक के सामने नवगछिया, भागलपुर
3. स्टेशन बुक स्टॉल, नवगछिया
4. अध्यात्मसंघ पचगछिया बाजार, नवगछिया
5. माया मेडिकल हॉल, कालीबाड़ी, कटिहार
   एवं अन्य पुस्तक केन्द्रों पर

सहयोग राशि – 15/–

मुद्रक : सृजन प्रेस
पन्नाकॉलोनी, नयाबाजार, भागलपुर

विचाराशीष

भक्ति, मुक्ति, शान्ति मानव-मात्र की मूल मांग है। प्रेयमार्ग पर चलते हुए इस माँग की पूर्ति कभी सम्भव नहीं है। इसके लिए श्रेयमार्गी बनना ही होगा। साधन-पथ के पथिक को तमाम प्रतिकूलताओं के मध्य से गुजरना होता है, किन्तु लक्ष्य पर अटल दृष्टि हो और लक्ष्य को प्राप्त करने का दृढ़-संकल्प हो तो सारी प्रकिूलताएँ अनुकूलता में बदल जाती है। ध्यानयोग द्वारा जीवन का चरमलक्ष्य प्राप्त करना सरल हो जाता है। सारी प्रतिकूलताएँ स्वतः धीरे-धीरे शांत हो जाती है।

साधक अन्तेवासी श्री रामचन्द्र पाण्डेय 'रसिक' (स्वामी आगमानन्द जी) ने 'ध्यानयोग-विज्ञान-रहस्य' के ध्यानयोग के सारभूत रहस्य को अपने लघु आलेख में प्रस्तुत करने का प्रशंस्य-प्रयास किया है। इससे निश्चय ही ध्यानयोगाभ्यासियों का दिशा-निर्देश हो पाएगा - ऐसी आशा है।

विक्रमशिला कॉलानी
रामसर, भागलपुर

प्रो० डॉ० राजेन्द्र पंजियार
आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
ति.मां.भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर

दृष्टि-दर्शन

श्री रामचन्द्र पाण्डेय 'रसिक' को मैं तबसे जानता हूँ, जब ये एम.ए. (हिन्दी) के छात्र थे। प्रथम श्रेणी में एम.ए. पास करने के बाद ये स्वतंत्र अध्ययन, चिन्तन-मनन में प्रवृत्त हो गए। छात्र जीवन से ही आध्यात्मिक लगाव के कारण सम्प्रति ये अहर्निश अध्यात्म-चिन्तन में दत्तचित्त हैं। लगभग सम्पूर्ण भारत का भ्रमण भी कर आए है। पाण्डेय जी सहृदय कवि और काव्य-रसिक भी है। तंत्र-साधना आगम में इसकी पर्याप्त गति है। प्रायः ऐसा समझा जाता है कि वैदिक-साधना (निगम) और तंत्र-साधना (आगम) में छत्तीस का सम्बन्ध है। पर इन्होंने दोनों के बीच सतुलन बनाने का भरसक प्रयास किया है।

श्री पाण्डेय जी की तंत्र में रुचि का प्रमाण इनकी पुस्तिका (सम्पत्ति पांडुलिपि) ध्यान-योग-विज्ञान-रहस्य है। मनोयोगपूर्वक ध्यानयोग पर विचार करते हुए इन्होंने सिद्ध करने की चेष्टा की है कि यह व्यक्ति के सम्पूर्ण मंगल की पृष्ठभूमि है। व्यक्ति के सारे पाप इसके कारण धुल जाते हैं। सांसारिक जीवन-यापन में भी इससे बड़ी मदद मिलती है। इन दिनों भारत के कारागारों में भयंकर अपराधियों को ध्यानयोग के माध्यम से अपराध-विरत करने की सार्थक मुहिम चलायी जा रहा है। खिलाड़ियों आदि के मेंटल-संतुलन के लिए ध्यानयोग पर बल दिया जा रहा है। इस दिशा में ध्यानयोग शिविर या केम्पिग भी लगायी जा चुकी है। कहना न होगा कि ध्यानयोग समस्त योगों में सर्वोपरिता रखता है।

श्री पाण्डेय जी इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं। इनसे हमें ढेर सारी अपेक्षाएँ हैं। ईश्वर इन्हें यशस्वी बनाएँ।

प्रो० डॉ० बहादुर मिश्र
आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
ति०मां० भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर

श्रीगुरू शरणम्

श्रीकृष्णः शरणं मम्

निवेदन - सुमनांजली

(द्वितीय संस्करण)

सम्प्रति कलिकाल में दुर्गुण बहुतेरे हैं, लेकिन एक महत्वपूर्ण सद्गुण भी है। कलियुग में काम, क्रोध, लोभ, मोह, बिमारी, कपट, अशांति के इस पंकिल - युग में भी जो महत्वपूर्ण सद्गुण है वह है, ध्यानयोग। ध्यानयोग के तीन आध्यात्मिक सिद्धांतों-दर्शनों में प्रथम है, स्मृति या ध्यानयोग। निरंतर अविकल ध्यानयोग को लक्ष्य बनाने से कलियुग के जहरीले अशांतिदायी दोष, सुनिश्चित शांत हो जाते हैं। वैसे दूसरा है -दानयोग और तीसरा है सेवायोग। इस कलियुग में इन योगों से उत्पन्न परिणामों का बड़ा भारी चमत्कार है।

ध्यानयोग की महिमा उत्कृष्टतम है। श्रम करके कितना भी अकूत धन व अखंड सत्ता प्राप्त करले, लेकिन मानव मन को स्थायी व सच्चा सुख तथा वास्तविक समझ तब तक नहीं मिलती, जब तक उसके पास अंतरात्मा का मधुरस, परमात्मा का ध्यान प्राप्त नहीं होता। धनकुबेरों के सभी दुःख नहीं मिटते तथा मृत्यु का दुःख तो सभी के सिर पर मँडरा ही रहा है। मर भी गए तो जन्मने का दुःख और जन्म ना मिले तो नारकीय नाली में बहने का दुख तो विद्यमान है ही।

ध्यानयोग से विवेक जागृत होता है। विवेक से सुसूक्ष्म आत्मा सबल होती है, तत्पश्चात ही मन व इन्द्रियों का सबल नियंत्रण संभव बन सकता है।

योगग्रंथों के प्रमृशों ने, प्रमुखतः ध्यान चार प्रकार के निरूपित किये हैं। प्रथम है - पादस्थ ध्यान, दूसरा है- पिंडस्थ ध्यान, तीसरा है - रूपस्थ ध्यान, चौथा है - रूपातीत ध्यान।

भारतीय योगवाङ्मय में योग ध्यान के तीन प्रकार का उल्लेख है। प्रथम - स्थूल ध्यान या सगुण ध्यान, दूसरा - ज्योति ध्यान, तीसरा सूक्ष्म ध्यान।

योगेश्वर अभिव्यंजित श्री गीताजी पुण्यतोया योग की पावन गंगोत्री तो है ही जहाँ ध्यानयोग की सुचर्चा हो वहाँ श्री गीता जी के शुभ्र शुचि श्लोकों की चर्चा कैसे न हो? यथा -

यथा दीपो निवातस्थोत नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यत चित्तस्य युंजतो योगमात्मनः।।

(गीता 6/19)

अर्थात् जिस प्रकार वायुरहित स्थान में दीपशिखा चलाय मान नहीं होती वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गई है।

परम-आदरणीय, अभिवन्द्य, परम अवधेय, सुहृद्वर, अमित उर्जस्वी, सृष्टि की अखिल आत्माओं में हृदयप्रमाथी मुस्कान विखरने वाले परम उद्बुद्ध श्री स्वामी आगमानन्दजी द्वारा दशकों पूर्व "ध्यानयोग - विज्ञान - रहस्य" पुस्तिका आज के दूषित जीवन की जटिल समस्याओं के समाधान हेतु मानव कल्याणार्थ स्तुत्य, सजग, श्लाघनीय वन्दनीय सुप्रयास है। हम अध्यात्मसंघ पचगछिया वासी प्रस्तुत पुस्तिका के प्रकाशन का स्वागत करते हैं। साथ ही इस पुनीत कार्य हेतु स्वामी जी के प्रति अमित अभिनन्दन-अभिवन्दन अर्पित करते हैं।

निवेदक

विनय सिंह परमार

अध्यक्ष अध्यात्म संघ

पचगछिया बाजार, नवगछिया

भागलपुर

प्रार्थना-प्रसून

ध्यानमूलं गुरोर्मूत्तिः पूजामूलं गुरोर्पदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोर्कृपा।।

ध्यान, ध्याता का ध्येयतत्त्व से समरसता स्थापित कराने वाला अन्तः क्रियात्मक विज्ञान है। विश्वरूप विभु की सार्वभौमिकता, सम्प्रभुता को अविरल विश्व के विविध धर्मों, मतों, सम्प्रदायों विश्वासी भक्तों, संतों साधकों एवं प्रायः समग्र आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न ग्रंथों ने स्वानुभूति से स्वीकार किया है। आत्म-चिन्तन विमुख, भौतिक-चिंतकों ने आज भारत जैसे राष्ट्र को, साथ ही विश्व-मानवता को आचरण से भ्रष्ट कर पतनोन्मुख कर दिया है। अतः आवालवृद्धों को, विशेषतः दिग्भ्रमित नवयुवकों को आत्मोन्मुख करने के लिए प्रस्तुत "ध्यानयोग-विज्ञान-रहस्य" नामक पुस्तिका का लेखन-मुझ सा अधम का बाल-प्रयास है।

संसार के आदिकाल से आजतक के समस्त सिद्धसंतों, फकीरों, साधकों एवं सदग्रन्थों को मैं सादर नमन करता हूँ जिनकी कृपा से जनमानस को तुच्छ सेवा में प्रवृत्ति हुई है। अपने माता-पिता एवं समस्त दीक्षक गुरुजनों को तथा ति.मा.भा. विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के परम वंदनीय गुरुवर प्रो० डॉ० राजेन्द्र पंजियार जी एवं प्रो० डॉ० बहादुर मिश्र जी के चरणों में मैं सश्रद्धा शत्-शत् नमन करता हूँ जिनकी प्रेरणा से ही मैंने यह छोटी पुस्तिका लिखने की धृष्टता की। आचार्यद्वय के विचाराशीष का आभारी हूँ और रहूँ यही उनसे नम्र निवेदन है।

इस पुस्तिका का लगभग 13 वर्ष पूर्व प्रकाशन हुआ था। जिसे पाठकों और साधकों ने एक साथ अंगीकार किया था।

सकल जनमानस की इच्छा से यह फिर प्रकाशित हो रहा है। द्वितीय संस्करण के पुनः प्रकाशन का श्रेय अध्यात्म-संघ पचगछिया को है। इस पुनीत कार्य के लिए अध्यात्म-संघ के समस्त धर्म-प्रेमी सदस्य गण एवं अन्य सभी आत्मीय जन अशेष साधुवाद के सुपात्र हैं। परम आदरणीय प्रबुद्ध साधक एवं उद्भट् मनीषी अध्यात्म संघ पचगछिया के अध्यक्ष श्री विनय सिंह "परमार" जी ने निवेदन-सुमन अर्पित किया है एतद्र्थ वे विशेष आशीर्वाद के अग्रणी पात्र हैं।

इस पुस्तक के तृतीय संस्करण का प्रकाशन अपनी पूज्या माता स्व० भ्रमर देवी एवं पूज्य पिता स्व० ब्रजमोहन साहा की पुण्य स्मृति में श्री सुब्रत साहा एवं श्रीमती ज्योति साहा ने कराकर बहुत पुण्य का कार्य किया है। इसलिए मैं दोनों को एवं सकल परिवार को भरपूर आशीर्वाद देता हूँ।

प्रकाशन के फलस्वरूप यह निर्गन्ध-कृति-कुसुम आप सबों की सेवा में सत्वर समुपस्थित हो सका है। मननकर्त्ता मनीषीगण मेरी त्रुटियों को क्षमा करते हुए सम्यक् संशोधन का आदेश देंगे। इसी आशा के साथ अन्त में भगवान आद्य शंकराचार्य के शब्दों में विश्वमानवता से प्रार्थना करुँगा -

"अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम्।
चिन्तयात्मानमानन्दरूपं यन्मुक्तिकारणम्।।"

प्रार्थी :
आगमानन्द

ध्यानयोग-विज्ञान-रहस्य

1. योग-तत्त्व-मीमांसा सार

योग शब्द स्वतः एक महाविज्ञान है। विज्ञानविद् भारतीय ऋषियों-मुनियों की अध्यात्म-चिंतन-परम्परा या आप्तवाक्यानुक्रम में योग का स्थान अतिशय महत्त्वपूर्ण बताया है। इसी कारण तो योग शब्द का रहस्य वेद, वेदांगों, षडदर्शनों, पुराणों, उपनिषदों आदि सद्ग्रंथों में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से विवेचित किया गया है, जिसे योगतत्त्वानुसंधायकों ने विभिन्न ग्रंथों में विविध रूपों में प्रकाशित किया है। यद्यपि आज योग साहित्य पर रचित पुस्तिकों की कमी नहीं है तथापि योगेश्वर प्रथित श्रीगीताजी की स्थान निःसदेह सर्वोपरि है। भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन के गहन चिंतकों एवं शोधकर्त्ताओं ने महर्षि पतंजलि को लोक-दृष्टि से योग का प्रवर्त्तक माना है। उनका 'योगदर्शन' वस्तुतः योग महाविज्ञान का सारभूत तत्त्व-गंथ है। यहाँ योग के विषय में परिभाषा एवं विभिन्न ग्रंथोधृत विवेचनों का शब्द-बाहुल्य न देकर केवल सूत्ररूप में उसकी तात्त्विक अनुभूतियों को व्यक्त करना अपेक्षित होगा।

वस्तुतः आत्म-तत्त्व को परमात्म-तत्त्व से जोड़ने की अर्न्तप्रवृत्ति एवं पद्धति का नाम योग है। तत्त्वतः जितने तत्त्व है योग के उतने ही प्रकार है या फिर योग के अनन्त प्रकार है। क्योंकि प्रसिद्ध योगियों की दृष्टि में भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, लययोग, अष्टांयोग, हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग, तंत्रयोग, जपयोग, प्रेमयोग, सांख्ययोग, सुरतशब्दयोग, सत्संगयोग, गुरुतत्त्वयोग, विहंगमयोग, इस्सयोग, वियोग आदि अनेक प्रकार के योग है। साथ ही गीता जी में अठारह अध्याय में अठारह प्रकार के योग की चर्चा सूक्ष्म-चिंतन दृष्टि से की गयी

है। पर सीधी-सी बात है कि योग शब्द सब में जुड़ा है। इस तरह जोड़ने या जुड़ने का नाम ही योग है।

2. ध्यानयोग की एकरसता :

चिंतन की सूक्ष्मतम पद्धतियों से सारे योगों का रहस्य एक ही है। पर कुछ चिन्तक अष्टांगयोग को मूलरूप में स्वीकारते हैं। अष्टांगयोग के भी सभी क्रियात्मक रूप में प्राणयाम तथा ध्यान का ही महत्त्व माना जाता है। अष्टांगयोग के आठ भेद पतंजलि योगदर्शन में इस प्रकार वर्णित हैं -

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमधियोऽष्टावङ्गानि।"

(योगदर्शन 2/29)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग कहे जाते है।' पर कहीं-कहीं छ अंगों की ही चर्चा की गयी है -

"आसनं प्राणासरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानसमाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट्।।"

(ध्यानविन्दूपनिषद् 41)

यानि 'आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के छः अंग होते है।' वस्तुतः दोनों प्रकारों में कोई फर्क नहीं है। यम और नियम तो योग मार्ग में प्रविष्टि के लिए संयमादि का आधार है।

यम- अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह;

नियम - शौच, संतोष तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान (समर्पण)

आसन - स्वस्तिकासन, सरलासन, सिद्धासन तथा पद्मासन;

प्राणायाम - मुख्यतः पूरक, कुम्भक एवं रेचक (तीनों से प्राणवायु पर नियंत्रण); एवं भस्त्रिका, भ्रामरी, कपालभाति, शीतली, उज्जायी, अनुलोम-विलोम आदि।

धारणा - रूप या अरूप में एकाग्रता या आत्म-लाभार्थ शुभ संकलित भावना और कल्पना;

ध्यान- अनिच्छिन्नतैलधारावत् परमतत्त्व संदर्शन ;

समाधि - ध्याता के ध्यान की ध्येय में विलयता या आत्मा-परमात्मा की अभेदात्मक स्थिति।

योग के सारे भेदों-प्रभेदों में ध्यानयोग सर्वप्रमुख माना गया है। इतना ही नहीं, चर्चित-अचर्चित सारी योग प्रणालियों में ध्यानयोग का सर्वाधिक महत्त्व है और यही एक ऐसा तत्त्व है जो सबों में किसी-न-किसी रूप में अवश्य पाया जाता है। सिद्ध-साधकों के विचारानुमोदन से निश्चय ही यह योग भगवत्-तत्त्व प्राप्ति, भगवत्साक्षात्कार या परमशक्ति में विलय का श्रेष्ठ राजमार्ग है। ध्यानयोग समरस है, एकरस है।

3. ध्यानयोग का आध्यात्मिक महत्त्व

सूक्ष्मतम दार्शनिक दृष्टि से अध्यात्म शाश्वत एवं चिर विकसित विज्ञान है। किन्तु, आधुनिक विज्ञान कुछ कारणों से उस विज्ञान से अपना भिन्न आशय रखता है। एक का चिन्तन आधार हृदय है तो दूसरे का मस्तिष्क। एक हृदय की संवेदनात्मक अनुभूतियों का आकलन है तो दूसरा मानसिक चिन्तन के तर्कप्रधान बौद्धिक विचारों का आकलन। तथापि बहुत से तार्किक सदर्भों में भी अध्यात्म की सनातन अनुगूंज सुनाई पड़ती है। अपरिभाषित अनुभूति ही इसका मर्म है। कहा गया है -

"यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।1।।

ध्यानविंदूपनिषद श्लोक - 1

अर्थात् "यदि पाप पर्वत के समान ऊँचा हो तथा बहुत योजनों में फैला हुआ हो तो वे ध्यानयोग से अवश्य हीं नष्ट हो जाते हैं क्योंकि मानवात्मा को अमल बनाने के लिए दिव्यरूप या तद्रूप होने के लिए ध्यानयोग के अतिरिक्त कोई दूसरा सहज रहस्य ही नहीं है।"

ध्यानयोग का अध्यात्मिक महत्त्व शास्त्रीय है। जहाँ अनुभूति, साधना, स्वाध्याय आदि का अनुपम समागम होता है। यह तत्त्व-साधकों को अवश्य विदित होगा। जब हम इन बाह्य-चक्षुओं से संसार की समग्र वस्तुओं को, पदार्थों के बहुरंगी सौन्दर्य को देखते-देखते थक जाते हैं फिर किसी बाह्य वस्तुओं या तत्त्वों को न देखकर उस अन्तर-तत्त्व को देखने में अतिशय आनन्द का अनुभव करते हैं। मानव-विज्ञान की दृष्टि से मानव का मानस-संतुलित होते हुए स्वस्थ-चिन्तन के माध्यम से जिस विशिष्ट सौरमंडलीय-ऊर्जा का अधिग्रहण करता है और फिर परमानन्द प्राप्त करता है, वही ध्यानयोग-विज्ञान के आध्यात्मिक महत्त्व के रहस्य का सार है। वस्तुतः यदि सच पूछा जाये, तो इसका आध्यात्मिक महत्त्व कथनीय नहीं अनिवर्चनीय है।

"अणु और परमाणु का रहस्य तो मैंने खोज लिया है, पर भारत के अध्यात्म का रहस्य जानने के लिए यदि मैं सैकड़ों बार भी जन्म ग्रहण करुँ फिर भी कम ही होगा।"

- 'महानतम वैज्ञानिक आइन्सटीन'

4. ध्यानयोग का वैज्ञानिक विवेचन

आधुनिक विज्ञान के तर्क प्रमाणों की कसौटी पर

ध्यानयोग एक वैज्ञानिक अन्त:क्रिया के रूप में खरा ही उतरता है। यही मानव के द्वारा किये जाने वाले समग्र बाह्य-क्रियाओं का भी आधार है। वस्तुत: विज्ञान-रहस्य की दृष्टि से यह वह अन्त:क्रिया है जो सारी बाह्य-क्रियाओं का भी आधार है। वस्तुत: विज्ञान-रहस्य की दृष्टि से भी यह वह अन्त:क्रिया है जो सारी बाह्य क्रियाओं की संचालिका है। जो नित्य न भी करते हैं तो भी उनमें इसके कुछ कार्य सुषुप्ति में स्वयं सम्पादित होते रहते हैं। अस्तु, शंका करनेवालों को, इसका समाधान, अनुचिंतन करने पर स्वत: मिल जाता है। विश्व-ब्रह्माण्ड में विध्वंसी-प्रकृति या अहंभावी विज्ञानविदों के लिए अभी भी बहुत ऐसे विकट कार्यों की चुनौती है, जिसे वह कदापि नहीं कर सकता। प्राय: लोगों के विषय में हम सभी जानते हैं कि जब कोई सृष्टि के बाह्य-तत्त्वों का उपभोग करते-करते थक जाता है, घनघोर शारीरिक एवं मानसिक पीड़ओं से क्लांत हो जाता है तो यह शान्ति या विश्राम अथवा आराम चाहता है। इसी विश्राम के लिए जिस छाया की आवश्यकता होती है वही अध्यात्म कहलाता है। कर्मण्यता को कम महत्त्वपूर्ण समझने वाले कुछ दार्शनिक विचारक कहते हैं कि 'चार्वाक' भौतिकवादी, भोगवादी एवं नास्तिक प्रकृति का था। किन्तु सूक्ष्मतम दृष्टि से देखा जाये तो उनके सिद्धान्तों का सार भी यही कहता है 'अहं ब्रह्मास्मि' - जिसे वेद-वेदान्त का उत्कृष्ट निदर्शन माना जाता है। नीति-नियम भी कहता है - जो हृदय से आस्तिक हैं वे बाहर से कुछ विशिष्ट जिज्ञासावश बहुत नास्तिकता के सिद्धान्तों की वकालत करते है।' खैर, व्यापक विवेचन की ओर न जाकर सार रूप में यही कहना उचित होगा कि जिस तरह विज्ञान के निश्चित सिद्धान्तों के प्रयोगस्वरूप एक ऋणात्मक तथा एक धनात्मक विद्युतधारा बल्ब के फिलामेंट में मिलकर बाह्य-जगत को प्रकाशित करता है ठीक उसी तरह ध्यानयोग विज्ञान भी दो अन्तस् शरीरी विद्युतधाराओं को मिलाकर

अन्तर्जगत् प्रकाशित करता है। यह आभा अतिशत दिव्य होता है। वस्तुत: यह तर्क का नहीं अनुभव का विज्ञान है। जैसे हवा को देखना तर्क का विषय है उसका आभासीय ज्ञान अनुभव का विषय।

5. ध्यानयोग का मानव-जीवन पर प्रभाव

ध्यानयोग का मानव-जीवन पर अतिशय महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। ध्यानयोग की एकरसता या समाधि-भाषा में मानव-जीवन मृत्यु के मुख में जाने के बाद भी लौट जाता है और लौट सकता है क्योंकि क्षुद्र-तत्त्व दिव्य-तत्त्व के अधीन है। यही निश्चित मृत्यु इस पृथ्वी पर एक ऐसी चीज हैं जहाँ आजतक का वैज्ञानिक-अनुसंधान भी पंगु रहा है। ध्यानयोग के अभ्यास से बौद्धिक क्षमता की वृद्धि होती है, दिव्य ज्ञान का त्वरित-विकास होता है, स्मरण-शक्ति का संवर्धन होता है, सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्व का आधान होता है, शरीर-नीरोग, मन-शुद्ध तथा आत्मा पवित्र एवं परम-तत्त्वमय होती जाती है। तन-मन जन-जन के अन्त:प्रदूषण को शीघ्र दूर करने वाला यह ध्यानयोग हर-मानव सीख सकता है, कर सकता है किन्तु शास्त्रीय अनुबंधों के अनुकुल। द्वेष, कलह, घृणा, स्वार्थ, लोभ, अशिष्टता, भ्रष्टता, अनुशासनहीनता, असामाजिकता, आतंकवाद, उग्रवाद, नक्सलवाद, जाति-धर्म-भाषा-क्षेत्रवाद जो आधुनिक छिछली-राजनीति की देन है, ध्यानयोग सबका रसायन है।

6. ध्यान का सार्वभौतिक स्वरूप

ध्यान वह विज्ञान सम्मत यौगिक प्रक्रिया है जिससे ध्याता अपने आपको सम्पूर्णत: ध्येय में विलय कर देता है। भगवान पतंजलि का भी एक सूत्र है -

"तत्र प्रत्येकतानता ध्यानम्।" (योगदर्शन 3/2)

अर्थात् ध्येय वस्तु में चित्तवृति की एकतानता का नाम ध्यान है।

ध्यान के विविध प्रकार है जो विभिन्न शास्त्रों और ख्यातिलब्ध एवं अख्यात् साधकों से अनुमोदित है। पर यहाँ सर्वमान्य स्वरूप एवं विधि जो समय एवं परिस्थिति को देखते हुए सबके लिए सरल-सहज तथा अनुकूल हो उसी का उद्‌घाटन करना यथोचित होगा।

इस संसार में विशेषकर भारतीय धर्मों में सगुण-निर्गुण आदि बहुविध अरूप-रूप उपासना की बात आती है। निर्गुण में भी अनेक पद्धतियाँ या सम्प्रदाय अथवा विचारधाराएँ प्रचलित हैं। सगुण में राम, कृष्ण, दुर्गा, काली, गायत्री सावित्री, सीता, सत्या, सरस्वती, गणेश, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, हनुमान आदि अनेक रूप हैं। इसमें बहुत से साधक भ्रम में पड़ जाते है कि किस नाम-रूप या शक्ति-सत्ता की उपासना की जाए। इसका उत्तर संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में पहले ही दे दिया है -

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।"

अर्थात् "मैं एक हूँ सत् विप्र अथवा मनीषीगण मुझ एक को अनेक नाम-रूपों एवं अनाम-अरूपों से जानते और पुकारते हैं।" श्री गीता जी में उपासना के तत्त्व को इसी प्रकार से विवेचित किया है -

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथकत्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।।

(9/15)

तात्पर्य "ज्ञानयज्ञ से, और भी अन्य भाव से, एकत्व-एक नाम रूप से, अनेकत्व से अर्थात् विविध नाम-रूपों

अनाम-अरूपों से, बहुत प्रकार के साधक बहुत तरह से मुझ विराट ब्रह्म की ही उपासना करते हैं।" बात भी यह उच्च साधकीय दृष्टि से सटीक एवं प्रामाणिक सिद्ध होता है कि तत्त्वतः सगुण-निर्गुण आदि भेद-प्रभेदों में जितने नाम और रूप हैं सभी तत्त्वतः एक हैं। उपासकों की स्वतंत्र प्रवृत्ति एवं आचार्यों की प्रकृति-प्रवृत्ति-परख निर्देशन ही सर्वोत्कृष्ट भाव है। अस्तु जो जिस नाम-रूप या अनाम-अरूप की उपासना करते हैं वे उसी का ध्यान-चिन्तन-मनन करें अवश्य ही अभीष्ट लाभ होगा, परमपद मिलेगा या फिर तत्त्व-सिद्धि होगी। इसमें संदेह की तनिक भी गुंजाइश नहीं है। कुछ लोग गुरु-तत्त्व का ही ध्यान-मनन-पूजन करते हैं। यह भी साधना-पद्धति का ही एक प्रभाग है और यह भी उसी मंजिल की ओर ले जाता है जहाँ जगदीश्वर सर्वेश्वर की अज्ञात अतर्क्य ज्ञानगम्य एवं अनुभूतिजन्य सत्ता है।

अस्तु, समग्र उपासनाओं की विविध-प्रक्रियाओं के आलोक में यहाँ ध्यान-योग की उन विधियों का वर्णन किया जा रहा है जिससे हर मार्ग के साधकों, युवकों, छात्रों एवं योग जिज्ञासुओं को सहज रूप में मानस-शान्ति प्राप्त हो, चित्त में एकाग्रता आवे। अन्तस्-जगत के नामरूपारूप चिन्तन में तीन प्रकार की परिकल्पना अनुस्यूत रहती है। वे हैं - ध्याता, ध्यान और ध्येय।

ध्याता - ध्यान करनेवाला या जो ध्यान के लिए तत्पर हो या ध्यान कर रहा हो तात्पर्य जीवात्मा।

ध्यान- ध्याता ओर ध्येय इन दोनों को एक सूत्र में ग्रथित कर कार्य सिद्ध करानेवाली साधना अर्थात् वह माध्यम जिसके द्वारा अन्तर्चक्षु बहिर्चक्षु से, ध्याता ध्येय से दृष्टि एकरूपता करता या उसमें आत्मलीन कर देता है।

ध्येय- ध्यान के द्वारा प्राप्तव्य वस्तु या जिस तत्त्व का ध्यान

किया जाय अथवा जिस नाम रूप को हम ध्यान में लाएँ तात्पर्य परमात्मसत्ता।

इस तरह प्रत्येक ध्यान-कर्त्ता को 'अ+उ+म = ॐ के इस त्रिक् रहस्य को जानकर ही ध्यान करना चाहिए। वेदान्त-दर्शन तत्त्वमसि का तत्+त्वम्+असि का भी यही अन्तरंग रहस्य है। इससे ध्यानयोग के सार्वभौमिक स्वरूप का सुस्पष्ट समुद्घाटन हो जाता है। बौद्धिक-वृद्धि; स्मृति-सम्प्राप्ति, आध्यात्मिक उन्नति एवं सर्वांगीण अभ्युदय का यही परम आधार है। जैसे ज्ञाता ज्ञान-अर्जन करते-करते ज्ञेय में मिल जाता है, भक्त भगवच्चिंतन करते-करते भगवन्मय हो जाता है ठीक उसी तरह ध्याता ध्यान करते-करते ध्येय में मिल जाता है।

7. ध्यान की सरल और सर्वानुमोदित विधि

सर्व प्रथम साधक स्नानादि से निवृत्त होकर शुद्धिकरणादि कर कुश या कम्बल या किसी पवित्र आसन पर बैठकर नैमित्तिक पूजा कर लें। ध्यान का सर्वोत्तम समय रात्रि के अन्तिम या चौथे प्रहर को माना गया है। जिसका औसतन मान से समय 3 बजे से 6 बजे प्रातः का है। कुछ साधक रात्रि 12 बजे से 3 बजे तक तुरीय संध्या ध्यान भी करते हैं जिसका स्वरूप अत्यन्त जटिल और कठिन भी है। ऐसा कोई-कोई तत्त्ववेत्ता ही करते हैं। कुछ साधक उषाकाल या पूर्वाह्न के समय भी ध्यान करते हैं। और फिर दृढ़ध्यानाभ्यासी तो उठते-बैठते सोते-जागते खाते-पीते पल-पल जिधर भी दृष्टि रहे ध्यान प्रक्रिया में ही निमग्न रहते हैं। अतः साधकों की क्षमता के अनुसार उसे नियमबद्ध होना ही पड़ता है।

जिस समय उपयुक्त परिवेश हो उस समय ध्यान अवश्य ही करना चाहिए। भूमि-आसन पर बैठकर स्वस्तिकासन, सिद्धासन या पद्मासन में बैठना श्रेयस्कर होता है। अभ्यास-पूर्व

सामान्यासन में भी साधक बैठ सकते हैं। बैठने के बाद अपने रीढ की हड्डी या मेरुदण्ड को सीधा कर, अपने सर्वांग शरीर को सुदृढ़ रूप में संस्थित कर दोनों हाथों को मुट्ठी बाँध ठेहुने पर जमा देना या रख देना चाहिए अथवा बाएँ हाथ के खुले पंजे पर दाहिने हाथ का पंजा रखते हुए दोनों अंगूठे को सटाते हुए गोद में रख लेना चाहिए। यदि ऐसा करने में कुछ कठिनाई हो तो करबद्ध प्रणाम मुद्रा में भी किया जा सकता है। प्राणायाम का अभ्यास करनेवाले को प्रथम प्राणायाम कर फिर ध्यानारम्भ करना चाहिए। कुछ साधक केवल ध्यान भी करते हैं, कुछ दोनों एक साथ भी। भक्तयोगी या सगुण साधक अपने इष्ट के पूरे स्वरूप का या फिर पद-नख का ध्यान करते हैं, ज्ञानयोगी 'ॐ का या शब्द ब्रह्म' का ध्यान करते हैं तथा कर्मयोगी विशुद्धकर्त्ता विश्वरूप का। कुछ साधक शून्य या ब्रह्माण्ड का, कुछ विन्दु या सविता या नाद का, कुछ आकाश के तारे के स्वरूप का कुछ दिव्य ज्योति का ध्यान करते हैं। कुछ जिज्ञासु गुरु-स्वरूप या गुरु-चरण को परमतत्त्व मानकर उसी का ध्यानाभ्यास करते हैं। वस्तुतः साधक जहाँ से जिस आचार्य से दीक्षित हों तद्नुरूप ध्यान ही शास्त्रानुमोदित और अपेक्षित होता है। यद्यपि आज पाखण्डवादिता, साम्प्रदायिकता, स्वेच्छा-चारिता, जातीयता, अवसरवादिता आदि की प्रविष्टि आध्यात्म मार्ग में अतिशय होने लगी है तथापि वास्तविकता का लोप नहीं हुआ है। मैंने पूर्व भी चर्चा की है कि सारे इष्ट एवं सारे नाम-रूपों में वही एक परमात्मतत्त्व समाहित है। बाह्य ध्यानी साधक सम्मुख अभीष्ट का ध्यान करे या नासिकाग्र पर अथवा भृकुटि-मध्य। अन्तःध्यानी साधक आँख बन्द कर चित्त में या भौंहों के मध्य त्रिकुटी में अथवा इड़ा पिंगला औ सुषम्ना या सरस्वती के त्रिवेणी संगम पर ध्यान कर सकते हैं।

ध्यान के समय प्राप्त मंत्र या प्रिय नाम अथवा अनामी

का मानस जप भी करें तो उत्तम होगा। जिस स्वरूप या अरूप का ध्यान करते हैं वहाँ प्रयत्न करें कि हमारा मन इसी स्वरूप का चिंतन कर रहा है, हम अन्तर्चक्षु से उसे ही देख रहे हैं, श्वासों में उनका शब्द ही झंकृत हो रहा है, श्रवणेन्द्रिय बाह्य किसी को आवाज से प्रभावित न होकर उन्हीं शब्दों को सुन रहा है और रसना (जीभ) उसी से निःसृत मधुमय सच्चिदानन्दामृत का पान कर रही है। पहले चित्त-वृत्तियाँ या मानस-दृष्टि स्वरूप से हटती हैं, आती-जाती रहती हैं किन्तु अभ्यास की निरंतरता से वह धीरे-धीरे स्थिर हो जाती है। क्रमशः स्थिर होने पर साधक को ध्यानाभ्यास का समय बढ़ाते रहना चाहिए। 24 घंटे कलिकाल के गाल में पड़े व्यस्त मानवों को, कम-से-कम 1 घंटा समय इस ध्यानाभ्यास में अवश्य देना चाहिए। अधिक समय देकर आनन्द विभूति में लय रहना तो साधकों की इच्छा और ऊँचाई पर निर्भर है। इसी क्रम में समाधि की अनुभूति होती है और फिर समाधिलीनता या समाधिस्थता।

साधना-पथ पथिक के लिए शुभ-संकल्पों का ग्रहण एवं अशुभ विचारों का त्याग भी परमापेक्षित है। आहार-विहार, विचार-व्यवहार की परिशुद्धता, शुचिता आदि आवश्यक है। उपयुक्त साधन, लगन, तत्परता अभ्यास, श्रद्धा, विश्वास भावनात्मक विशुद्धता एवं सम्यक् प्रयत्न से ही कोई भी साधना पूर्ण होती है। सर्वतोभावेन समर्पित साधक साधना करते-करते अवश्य ही साध्य में विलीन हो जाता है। विशिष्ट स्वाध्याय एवं चिंतन-मनन, सद्ग्रंथों के सम्यक् अनुशीलन से इस विषय की विशेष जानकारी एवं आचार्य तत्त्व या योग सिद्धों से इसके रहस्य का समुद्घाटन करते रहना चाहिए।

ध्यानयोग के रहस्य को निरुपित करते हुए कहा गया है, जो आत्मानुभूत्यानुरंजित है -

"यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम्।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः।।"

अर्थात् "जिस प्रकार कोई तेजोमय रत्न मिट्टी से लिप्त रहने के कारण छिपा रहता है, अपने वास्तविक रूप में प्रकट नहीं होता, परन्तु वही जब मिट्टी आदि को हटाकर, धो-पोछकर साफ कर लिया जाता है तब वही रत्न अपने यथार्थ या वास्तविक रूप में चमकने लगता है। उसी प्रकार इस जीवात्मा का वास्तविक स्वरूप अत्यन्त स्वच्छ होने पर भी अनन्त जन्मों में किए हुए कर्मों के कुसंस्कारों से मलिन हो जाने के कारण प्रत्यक्ष प्रकट नहीं होता। परन्तु जब मनुष्य ध्यानयोग के साधन द्वारा समस्त मलों को धोकर आत्मा को यथार्थ स्वरूप को भलीभाँति तत्त्वतः प्रत्यक्ष कर लेता है तब वह असंग हो जाता है। अर्थात् उसका जो जड़ पदार्थों के साथ संयोग हो रहा था उनका नाश होकर वह कैवल्य-अवस्था या मुक्तावस्था को प्राप्त हो जाता है तथा उसके समग्र दुःखों का अन्त होने पर वह सर्वथा कृतकृत्य, उसका मनुष्य जन्म सार्थक हो जाता है।"

('कल्याण' योगतत्त्वांक, वर्ष 65, पृ०-5)

सर्वस्वसार के रूप में कहना कदापि अनुचित नहीं होगा कि यह बाह्य सांसारिक ज्ञान की अपेक्षा अर्न्ततम का निगूढ़ तर्कहीन अनुभव का महाविज्ञान है। हर तत्त्व-जिज्ञासु को इसका आश्रय ग्रहण कर अवश्य ही मानव-जीवन को सफल करना चाहिए। ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकरूपता ही समाधि है, परम-तत्त्व है। 'परो हि योगो मनसः समाधि।' (श्रीमद्भागवत) तात्पर्य यह है कि मन की समाधि-स्वरूपता ही परम योग है और यही योग का परम-लक्ष्य है और मानव का चरम-लक्ष्य है।

-: इत्यलम् :-